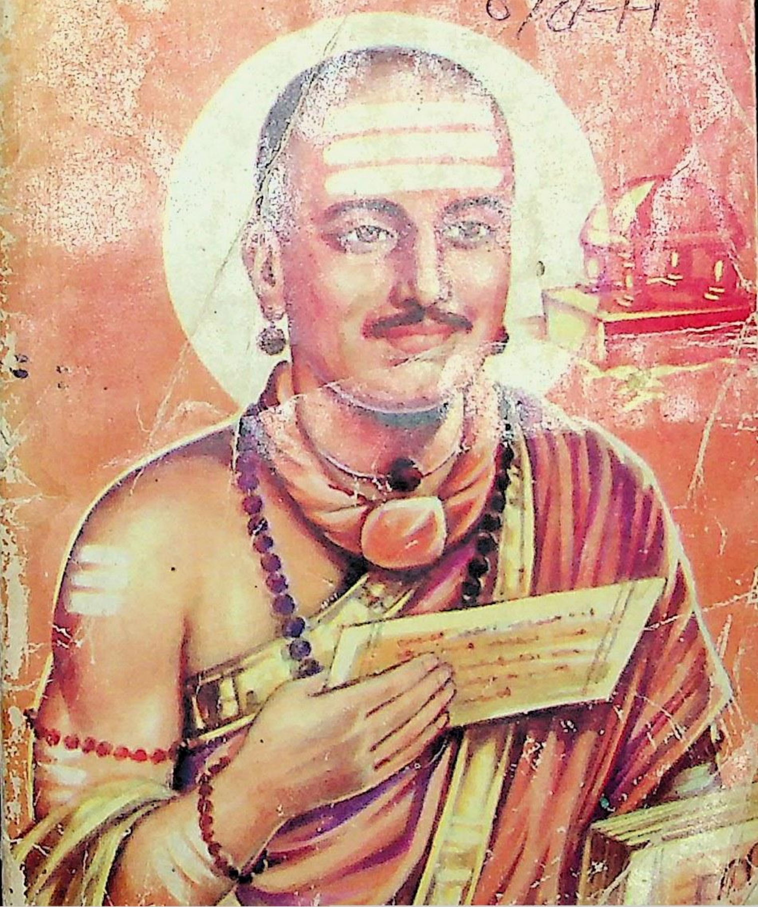
बसवेश्वर

एस. एस. माळवाड



पुष्प १०३

बसवेश्वर

लेखक

एस. एस. माल्वाड

अनुवादक

सत्यपाल पटाईत

मुख्य सम्पादक

एल. एस्. शेषगिरिराव

भारत-भारती [हिन्दी संस्करण]

दईफर पथ, नागपुर ४४०००२ [महाराष्ट्र]

प्रकाशक
प्रभाकर फैंजपुरकर
कार्यवाह
भारत-भारती बाल-पुस्तकमाला प्रकाशन
रुईकर पथ, नागपुर, महाराष्ट्र

संपादक, हिन्दी संस्करण
सत्यपाल पटाईत

प्रथम संस्करण–फरवरी १९८६

मूल्य रु. २–५०

मुद्रक
दि. भि. घाक्रस
नाग मुद्रणालय, रुईकर पथ, नागपुर–२

कुछ अपनी बात

हमारे पूर्वजों का स्मरण, सदा प्ररणा का अखंड स्रोत रहा है। उनकी जीवनियों का अध्ययन हमारे लिए सदा ही शिक्षाप्रद, मार्ग-दर्शक सिद्ध हुआ है। न केवल भारत अपितु इस विश्व की समस्त मानवजाति के लिए हमारा यह सांस्कृतिक-धन एक आकर्षण का विषय रहा है।

अपने इस गौरवमय इतिहास के निर्माता इन महान् पुरुषों की जीवनियों को सरल, सुबोध और सहज ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य राष्ट्रोत्थान परिषद, बंगलोर ने प्रारंभ किया है। कन्नड तथा अंग्रेजी में छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में इस इतिहास को नयी पीढी तक पहुंचाने का यह कार्य है। मूलतः यह कन्नड में लिखी गयी हैं।

भारत-भारती बाल-पुस्तकमाला प्रकाशन, नागपुर ने इसी का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने का दायित्व उठाया है और 'भारत-भारती'

(हिन्दी संस्करण) के अंतर्गत इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

हमारे ऐतिहासिक महापुरुष, ऋषि-मुनि, सम्राट, वीर, योद्धा, साधु-संत, राजनीतिज्ञ, कलाकार सभी का समावेश इसमें है।

नयी पीढी को अपनी इस अमर थाती को सौंपने में, हमारा भी कुछ सहयोग रहा, इसकी हमें प्रसन्नता है। विश्वास है आप भी इसे पसंद करेंगे और हमारा हाथ बटावेंगे।

विनीत

सत्यपाल पटाईत

सम्पादक

बसवेश्वर

मानव-धर्म के मूल सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारकर ही उनका प्रसार-प्रचार करनेवाले महापुरुष बसवेश्वर! कन्नड भाषा को समृद्ध कर, आध्यात्मिक ग्रन्थों को संस्कृत से कन्नड में प्रस्तुत-कर, जनसाधारण के लिये उन्हें सहज प्राप्य कराने का महान कार्य आपने किया।

राज्य के मन्त्री रहते हुए भी सादा-जीवन और उच्च विचार का आदर्श प्रस्तुत किया। नीति विषयक उनके सिद्धान्त अद्‌भुत थे। समाज जीवन को प्रभावित करनेवाले थे। आज आठसौ वर्ष बीत जानेपर भी, इसी कारण वे श्रद्धा एवं आदर के पात्र रहे हैं।

○ ○

चोरी मत करो; हिंसा से दूर रहो; असत्य भाषण से बचो; संयम न छोडो; दूसरों से घृणा मत करो; अपनी प्रशंसा स्वयं करना ठीक नहीं; दूसरों पर दोषारोपण नहीं करना चाहिये यही आंतरिक शुद्धि है; यही बाह्य शुद्धि भी है। इसी से भगवान कूडलसंगम प्रसन्न होंगे।

अत्यंत सीधे–सादे य शब्द हैं, पर इन में अपार ज्ञान भरा है। सारे जगत् की नैतिक शिक्षा का, मानव-धर्म का सार यही है। हमारा जीवन अंतर्बाह्य शुद्ध हो। भगवान की कृपा पाने का यही मार्ग है। भगवान की कृपा ही जीवन में आनंद भर देती है।

यह हैं, 'वचन'। बसवण्णा के वचन। कूडलसंगम उनके परिवार का दैवत था। प्रत्येक वचन के अंत में इसका उल्लेख है। बसवण्णाने ऐसे कई वचन लिखे हैं।

बसवण्णा के जन्म के पूर्व धार्मिक और नैतिक शिक्षा संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। परंतु बसवण्णाने कन्नड में लिखना प्रारंभ किया। इससे कन्नड भाषा समृद्ध होने लगी। कन्नड के लेखक उस काल में काव्य में ही रचना करते थे। बसवण्णाने वचन, गद्य में लिखने की प्रथा प्रारंभ कर दी। वह लोकप्रिय होने लगी। कन्नड में गद्य का विकास हुआ।

बसवण्णा की यह पद्धति अन्य लोगों को भी आकर्षित कर गयी। शैव संत (शैव शरण) भी गद्य में, वचन लिखने लगे। ये वचन जनता में प्रिय होने लगे। धार्मिक और नैतिक सिद्धांतों की चर्चा उनमें होती। समाज का निर्माण कैसे किया जाय, यह शिक्षा इनमें दी जाती थी। जनता में इन वचनों से जागृति होने लगी। नैतिक शिक्षा को समझने में उसे अब सरलता हुई। समाज में नयी चेतना आ गयी। उसका नया रूप बना।

बसवण्णा प्रत्येक व्यक्ति को यही सीख देते कि अपना नियत काम करते रहो। इसके साथ

ही पवित्र जीवन व्यतीत करो। भगवान के प्रति निष्ठा रखो। इसी प्रकार किया गया कार्य सच्ची पूजा का परिचायक है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कार्य करता था, परिणामतः देश की अर्थ-नीति में सुधार हुआ। इस प्रकार समाज में धर्म, नीति, सामाजिक जीवन, आर्थिक व्यवहार, भाषा, साहित्य, सभी क्षेत्रों में बसवण्णाने एक महान परिवर्तन कर दिखाया। एक साथ इन सारे क्षेत्रों में सुधार कर उन्होंने महान कार्य किया।

बसवण्णा अत्यंत विनम्र थे। वे कहते, "मुझसे छोटा कोई नहीं।" वे यह भी कहते कि उनकी प्रशंसा नहीं की ज़ाय। वे भी जनता के एक अंग हैं। उसी के बीच रहकर कार्य करना चाहते हैं। वे अत्यंत स्नेह के साथ, शिष्टता के साथ लोगों से व्यवहार करते। किसी को पिता कहते, तो किसी को भाई। वे एक दीप की भांति प्रकाश के स्रोत थे। उन्होंने न केवल अपनी मातृभूमि बल्कि सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित किया।

बसवण्णा कौन थे ?

ये बसवण्णा आखिर थे कौन ? आठसौ वर्ष पुरानी घटना है। कर्नाटक प्रदेश के बीजापुर जिले में एक गांव है बागेवाडी। इस गांव में एक दम्पती रहा करते थे। नाम था मादरसा और मादलाम्बिके। दोनों पति-पत्नी अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के थे। गांव में नंदीश्वर का एक मंदिर था। दोनों नंदीश्वर के भक्त थे। मादलाम्बिके को बडी चाह थी कि उसके एक पुत्र हो। भगवान शिव का पूजन वह रोज करती। पूजा के बाद पुत्रप्राप्ति की कामना करती। एक दिन पूजा के बाद वह ध्यान कर रही थी कि शिवलिंग पर चढाया चमेली का फूल, उसकी गोद में आ गिरा। अत्यंत भक्तिभाव से उसने यह प्रसाद ग्रहण किया। अपनी आंखों से उसे लगाया और केशों में धारण कर लिया। दिनभर वह अत्यंत प्रसन्न थी। रात्रि को जब उसे नींद आयी तो उसने स्वप्न में देखा, शिव-पार्वतीने अपने नंदी को भेजा है। नंदी उनके घर पहुंचा और फिर सर्वत्र प्रकाश फैल गया।

प्रातः उठते ही उसने अपना यह स्वप्न पति को बताया। पति ने अपने गुरू को सभी कुछ जा सुनाया। वे पूरे ग्राम के आध्यात्मिक गुरू थे। गुरू ने कहा, यह एक शुभ चिह्न है, शकुन है। उन्हें गुणवान पुत्र प्राप्त होगा। पूरे वंश का नाम चमकावेगा। संपूर्ण विश्व को ज्ञान-मार्ग दिखावेगा! पति–पत्नी दोनों अत्यंत प्रसन्न हुए। यह भगवान की कृपा मानकर उन्होंने प्रणाम किया।

बागेवाडी गांव छोटासा था। मादरसा गांव का मुखिया था। मादलाम्बिके के स्वप्न की चर्चा सारे गांव में फैलते देर नहीं लगी।

मादलाम्बिकेने कुछ दिनों बाद एक पुत्र को जन्म दिया। बालक बहुत सुन्दर था। उसके चेहरे पर अलौकिक तेज था। पर आश्चर्य! अन्य बच्चों की भांति वह रोया नहीं। उसने अपनी आंखें भी नहीं खोलीं। तपस्या में लीन किसी मुनि समान वह शांत था। मां घबरा गयी। परिवार के गुरू कूडलसंगम में थे। पिता ने उनके

पास पहुंचकर, बालक के जन्म का यह समाचार उन्हें देने का निश्चय किया।

कृष्णा और मलापहारी नदियों का संगम जहां है, उस पवित्र स्थान को कूडलसंगम कहते हैं। भगवान संगमेश्वर का मंदिर वहीं स्थित है। मादरसा परिवार के गुरू इस मंदिर की देखभाल पूजा-अर्चा करते थे। वहीं उन्होंने एक गुरूकुल चलाया था। उनकी तपस्या और विद्‌वत्ता से उनके प्रति सभी के मन में आदर था। उनका प्रभाव भी सभी पर था। मादरसाने उन्हें बालक के जन्म की पूरी जानकारी दी। वे तत्काल बागेवाडी की ओर रवाना हुए।

बालक को देखते ही उनके ध्यान में यह बात आ गयी कि यह असाधारण है। उन्होंने संगम से लायी हुई भस्म, बालक के माथे पर लगायी। बालक ने तत्काल आंखें खोल दीं। गुरूने उसके गले में लिंग बांध दिया। इस पर वह हंसने लगा। गुरूने इस प्रकार उस नवजात बालक को आध्यात्मिक दीक्षा दे दी। मादरसा

और मादलाम्बिका के लिये यह सब कुछ नया था। गुरूने उन्हें समझाया, "भगवान शिव की कृपा से नंदी ने, तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लिया है। यह बालक महान बनेगा। धर्म का ध्वज सारे जगत् में फहरावेगा। मानवजाति का कल्याण इसके हाथों से होगा। यह हमारी इस भूमि के लिये निश्चित रूप से एक सौभाग्य की ही बात है। इस बालक का नाम 'बसव' रखो।"

संस्कृत शब्द 'वृषभ' का ही कन्नड रूप है 'बसव'। गुरू की आज्ञा के अनुसार बालक का नाम 'बसव' रखा गया। बाद में आदरपूर्वक लोग इसी बालक को 'बसवेश्वर' कहने लगे। अपने साथियों के कल्याण की कामना हमेशा ही बसवेश्वर के मन में रहा करती थी। वह उन सभी से अत्यंत स्नेह रखते थे और उनके अभिन्न साथी बन गये थे। अतः उन्होंने इन्हें 'बसवण्णा' (बसव–बडे भैया) कहना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार बसव से वे बसवण्णा बने। वह सन् था ११३१ जब बसवण्णा का जन्म हुआ।

कूडलसंगम पर

बसवण्णा क्रमशः बडे होने लगे। एक होनहार बालक के रूप में वे सभी के प्रिय बन चुके थे। उनके माता-पिता ही नहीं तो बागेवाडी के सारे लोग उन्हें देखकर प्रसन्न होते। प्रसन्नता से उनकी आंखें छलछला जातीं। प्राथमिक शाला में वे सबसे बुद्धिमान छात्र रहे। अपनी आयु की तुलना में वे बहुत अधिक बुद्धिमान थे। वे एक बहुत अच्छे बालक थे। प्रत्येक के साथ उनकी मैत्री थी। उस कोमल आयु में भी वे विचारमग्न बैठ जाते। उनके अपने विचार अलग ही होते। शिक्षक परम्परागत तरीके से पढाते। पर हर कदम पर इस बालक का प्रश्न रहता, कैसे? क्यों? शिक्षक बालक की जिज्ञासा का समाधान नहीं कर पाते थे, पर स्वतंत्र विचारबुध्दि की और साहस की सराहना करते थे।

गांव में कई धार्मिक उत्सव होते थे। बसवण्णा प्रत्येक घटना का अर्थ समझना चाहता था। परंतु उसका समाधान कोई भी नहीं कर पाता था। जाति-प्रथा उन दिनों में भी थी।

समाज में कुछ लोग ऊंची जाति के समझे जाते तो कुछ नीच। बसवण्णा को यह अच्छा नहीं लगता था। सभी को समान दृष्टि से देखा जाय, यह उनका विचार था। सभी पवित्र हों और भगवान के प्रति निष्ठा रखनेवाले हों, यह वे चाहते थे। प्रत्येक को काम करना चाहिये, यह भी उनका विचार था। मतलब बाल्यकाल से ही ऐसे उदार विचार उनके मन में उठते। यह सभी भगवान की कृपा ही थी।

बसवण्णाने आठ वर्ष पूर्ण किये। प्रथा के अनुसार उनका उपनयन संस्कार किया जाना था। पर उनके प्रश्न थे ही, "इस समारोह का क्या अर्थ है ? इसकी आवश्यकता क्या है ?" वास्तव में जन्म होते ही, गुरू संगमेश्वरनें उन्हें लिंग पहनाकर आशीर्वाद दिया था। उन्हें अब किसी बात की, किसी संस्कार की जरूरत ही नहीं थी। उन्होंने अपने पिता से भी यह कहा। मादरसा यह सुनकर चकित रह गया। उसे दुख भी हुआ। पर बसवण्णा की भूमिका स्पष्ट थी। दृढ थी। मादरसा के लिये संकट

उत्पन्न हो गया कि, परिवार की इस परंपरा को कैसे तोडे ? बसवण्णा भी विचार कर रहे थे। अंततः उन्होंने पिता से कहा, " पिताजी, आपको यह परिवार की प्रथा अच्छी लगती होगी, पर मुझे नहीं लगती। मैं आपको संकट में नहीं रखना चाहता। मैं सदा के लिये यह घर छोडकर चला जाऊंगा। संगम पर जाकर, वहीं अपना अध्ययन पूर्ण करूंगा। पूज्य गुरू संगमेश्वर के चरणों में बैठकर मैं विद्याध्ययन करूंगा।"

माता-पिताने तथा परिवार के अन्य लोगोंने बहुत समझाया। परंतु बसवण्णाने अपना विचार नहीं बदला। अपना घर छोडकर वे कूडलसंगम की ओर चल दिये। एक छोटे से बालक का यह साहसिक और दृढ निश्चय, सभी को चकित कर गया।

बाद में उन्होंने जो क्रांति धार्मिक जीवन में लाकर दिखायी, उसी का यह प्रारंभिक संकेत था।

" आओ, बसवण्णा आओ!"

धर्म उन दिनों रूढि मात्र हो चुका था। कुछ औपचारिक रीति-रिवाज पूर्ण कर लेना ही, धर्म का पालन समझा जा रहा था। धर्म का वास्तविक अर्थ लोग भूल चुके थे। लोग भूल चुके थे कि ईश्वर एक है। उन्होंने अनेक छोटे-छोटे देवी-देवता बना लिये थे। धर्म के नाम पर जाति-पंथ बन चुके थे। अंध-विश्वास पनप रहे थे। जन्म तथा व्यवसाय से मनुष्य का स्तर नापा जाता था। स्वर्ग की कामना इतनी अधिक थी कि, इस जगत में जीवन गलत दिशा की ओर जा रहा था।

ईश्वर तो एक है। हम सब उसके बच्चे हैं। धर्म में सभी को समान अवसर मिलना चाहिये। प्रेम के साथ सभी को रहना चाहिये। दया तो धर्म का मूल है। जनता के बीच ये सारे विचार कायम करने थे। समझाने थे। बसवण्णा के जन्म के साथ इस प्रकार का वातावरण सर्वत्र था। बाल्यकाल में ही उन्होंने असाधारण साहस दिखाया। अपने जीवन में कुछ

करने की इच्छा, अभिलाषा उन्होंने व्यक्त की थी कि अर्थहीन प्रथाओं को तोडना और इसी निश्चय के साथ, बसवण्णाने बागेवाडी से प्रस्थान किया।

संगमपर पहुंचते ही गुरू संगमेश्वरने बसवण्णा का बडे प्रेम से स्वागत किया। "आओ बसवण्णा, आओ। मैं जानता था तुम एक न एक दिन अवश्य आओगे।" गुरूने अत्यंत प्रेम से कहा। "तुम्हारे जैसे बुद्धिमान विद्यार्थी गुरुकुल का नाम चमकावेंगे। उसकी प्रसिद्धि तुम्हीं से होगी। यहां भगवान संगमेश्वर हमेशा साथ रहेंगे। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा आध्यात्मिक विकास यहां खुलकर हो सकेगा। मानव-कल्याणार्थ तुम्हारे हाथों, महान कार्य होंगे।"

शिक्षण

बसवण्णा अपने माता–पिता को छोडकर चले आये थे। गुरू के मधुर शब्दों से उनका ढाढस बंधा। वे प्रसन्न हुए। गुरू के मार्गदर्शन में अब उनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। जीवन में एक



गुरू संगमेश्वर ने बसवण्णा का स्वागत ही किया

नया अध्याय प्रारंभ हुआ। बसवण्णा प्रातः उठ जाते। कुछ देर तक भगवान का ध्यान करते। सूर्योदय के पूर्व, पूजा के लिये फूल चुनते। फूलों को देखकर वे स्वयं भी फूले नहीं समाते। प्रत्येक फूल में वे उस सर्व शक्तिमान का दर्शन करते। संगमेश्वर की पूजा करते समय तो वे अपने आप को भूल जाते। सर्वत्र, हर कहीं भगवान के ही दर्शन उन्हें होते थे। अपने गले में पहने लिंग में, संगमेश्वर की प्रतिमा में, समूचे विश्व में भगवान ही दिखाई देते। भगवान के प्रति उनकी इस निष्ठा की सराहना सभी लोग करते। पूजा के बाद अध्ययन प्रारंभ होता। अपना पाठ पूरा करने के बाद, वे प्रत्येक विषय से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें पढते थे। पूजा के समान इस अध्ययन में भी वे पूरी तरह एकाग्र बने रहते। पुस्तकें पढने के बाद गुरूजनों से, विभिन्न मुद्दोंपर चर्चा करते। फिर शाला में (कक्षा में) जाते। अन्यान्य कार्यों में सहभागी होते। सायंकाल नदी के किनारे-किनारे दूर तक घूमने जाते।

अपनी बुद्धिमत्ता, निष्ठा, विनम्रता, सद्-व्यवहार से वे सभी के प्रिय बन चुके थे। वे सीधे-सादे पर फुर्तीले, स्पष्टवादी, सक्रिय रहनेवाले विद्यार्थी थे। सदा प्रसन्न रहा करते थे। पर अध्ययन में गंभीर भी थे। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व सांचे में ढलता जा रहा था। गुरू को इस पर गर्व होता था।

गुरू की प्रसन्नता

उस गुरुकुल में अत्यत विद्वान एवं धर्मनिष्ठ शिक्षक थे। विद्यार्थियों को सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। आध्यत्मिक शिक्षा भी दी जाती। परीक्षा पास कर नौकरी करना, यह शिक्षा का ध्येय नहीं था। विद्यार्थी का, आत्मिक विकास साध्य करना ही इसका उद्देश्य था। जीवन में विशेष कुछ कर पाने योग्य उसे बनाना ही लक्ष्य था। बसवण्णा इसमें सबसे आगे रहे।

वर्ष पर वर्ष बीतते गये। बसवण्णानें शिक्षा की सभी शाखाओं को आत्मसात् कर

लिया। इस सांसारिक जीवन के लिये जो ज्ञान आवश्यक है, वह उन्होंने पा लिया। आध्यात्मिक शिक्षा भी उन्होंने ग्रहण की। एक स्वस्थ मस्तिष्क और स्वस्थ शरीर इसी रूप में वे विकसित होते रहे। मनुष्य के जीवन का अर्थ क्या है? अंतिम लक्ष्य क्या है? कर्तव्य क्या है? बसवण्णा इन विषयों पर गंभीरतापूर्वक विचार करते।

बसवण्णा की शिक्षा समाप्ति पर थी। उनके व्यक्तित्व की चर्चा सब ओर फैल चुकी थी। कल्याण नामक नगर में भी वह ख्याति पहुंची। वहां के एक मंत्री बलदेवने भी यह सब सुना।

कल्याण, चालुक्य राजा की राजधानी का नगर था। बसवण्णा के काल में कलचुरी वंश के बिज्जल का शासन चल रहा था। बलदेव वहीं मंत्री थे। बलदेव के मन में संगम और गुरू संगमेश्वर के बारे में पूज्यभाव था। बसवण्णा की ख्याति सुनकर वे कूडलसंगम पहुंचे। बसवण्णा से मिलकर उन्हें अतीव

प्रसन्नता हुई। गुरूने भी बसवण्णा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

बलदेवने बसवण्णा के बारे में सब कुछ सुना। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि, इतना गुणवान व्यक्ति बिज्जल के दरबार में होना चाहिये। राज्य की समृद्धि, ख्याति, गुणवानों की प्रतिष्ठा स्थापित करने से और बढेगी। दूसरा विचार यह भी आया कि अपनी कन्या के लिये, यह सद्‌गुणसम्पन्न, विद्वान वर भी योग्य होगा। गुरू को भी जब यह पता चला तो वे प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी स्वीकृति दी।

परंतु बसवण्णा तो अपने जीवन का लक्ष्य पहले ही निश्चित कर चुके थे। राजदरबार में मान-सम्मान प्राप्त करना या राजसेवा में उपस्थित रहने का विचार, उनके मन में कभी उभरा ही नहीं था। उनके उद्देश्य की प्राप्ति में, यह किसी भी भांति सहायक नहीं हो सकते थे। परंतु गुरूने उन्हें सलाह दी कि वे, बलदेव की बात मान्य कर लें। मानव-कल्याण के उनके कार्य में, यह, आगे चलकर सहायक ही



बसवण्णा कूडलसंगम में

सिद्ध होगा। बसवण्णा गुरू की बात टाल नहीं सके। गुरू की यही इच्छा है, यह देखकर वे तैयार हो गये।

कुछ दिनों के पश्चात, बसवण्णाने कल्याण के लिये प्रस्थान किया। भगवान संगमेश्वर की कृपा, गुरू का आशीर्वाद एवं लोगों की शुभकामनाएं लिये वे कल्याण पहुंचे। वह वर्ष था ११५५ ईसवी।

बसवण्णा का कल्याण में आगमन, मानव-कल्याण का मार्ग खुला कर गया। राजा बिज्जल के दरबार में एक कनिष्ठ अधिकारी के रूप में, उन्होंने कार्य आरंभ किया। उन्होंने देखा कि काम में कोई व्यवस्था नहीं है। अधिकारी आलसी हैं। उन्होंने व्यवस्था लाना प्रारंभ किया। राजा इससे प्रसन्न हुए। बसवण्णा की तीव्र बुद्धि एवं प्रशासनिक योग्यता का प्रभाव भी राजा पर पडा।

एकबार तांबे के पत्र पर लिखा एक प्राचीन लेख मिला। इस ताम्रपत्र की भाषा गूढ थी। भाषा-विद्वान भी उसका अर्थ नहीं

निकाल सके। बसवण्णाने उसे पढा। समझा। उन्होंने उसका अर्थ समझाया। राजा को उससे, छिपे हुए खजाने का रहस्य ज्ञात हुआ। राज्य के कोष में इससे भारी वृद्धि हुई। बसवण्णाने राजा के सम्मुख अनेक योजनाएं रखीं। राजकोष का सदुपयोग जनसाधारण के कल्याण के लिये किस प्रकार किया जाय, यही उनकी योजनाओं का लक्ष्य था। राजा अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने बसवण्णा को राजकोष का अधिपति बना दिया।

बसवण्णा का विवाह मंत्री बलदेव की कन्या गंगाम्बिका तथा राजा की पालिता कन्या नीलाम्बिका इनके साथ हुआ। विवाह और पदोन्नति से उनका दायित्व भी बढ गया। वे तरुण थे पर इस आयु में भी, इतना बडा पद उन्हें दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि कुछ ईर्ष्यालु उनका द्वेष करने लगे।

अनुभव मंडप

बसवण्णा कल्याण आये जरूर, परंतु मन ही मन उन्होंने आध्यात्मिक जागृति का अपना

कार्यक्रम निश्चित कर लिया था। ऊंच-नीच की कल्पना ने समाज को तोड दिया था। अर्थहीन रीतिरिवाज, रूढी बनकर, महत्त्व पा गये थे। धर्म का सार लोग भूल चुके थे। सद्‌गुणों का, पवित्र जीवन का लोप हो चुका था। पूजा करने का या धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार, सभी को नहीं था। बसवण्णानें समानता प्रस्थापित करने का निश्चय किया। धार्मिक जीवन का आधार यही बनेगा, यह उन्होंने तय किया।

लोकतांत्रिक आधार पर, उन्होंने एक संस्था बनायी। इसे नाम दिया 'अनुभव मंडप'। कोई भी व्यक्ति फिर वह किसी भी जाति का क्यों न हो, इसका सदस्य बन सकता था। स्त्रियों को भी प्रवेश था। विशुद्ध चरित्र एवं दयाभाव ही प्रमुख गुण थे, जो सदस्य में अपेक्षित थे। जीवन–निर्वाह के लिये, प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कार्य करना जरूरी था। जाति–भेद छुआछूत को कोई स्थान नहीं था। यही सारे नीति–नियम बनाये गये।

अनुभव मंडप की लोकप्रियता, इसी कारण, शीघ्र ही बढने लगी। कर्नाटक ही नहीं तो भारत में दूर-दूर से भक्तजनों का प्रवाह कल्याण की ओर बढने लगा। इन सभी को पूजा एवं भोजन की सुविधा मिले, ऐसी व्यवस्था 'महामने' (बडाघर) में की गयी। यह बसवण्णा का निवासस्थान था। अनुभवमंडप एवं महामने की व्यवस्था का भार स्वयं बसवण्णा, उनकी दोनों पत्नियां, बहन अक्कनागम्मा, भतीजा चन्नबसवण्णाने कुछ भक्तगणों के सहयोग से उठाया। श्रद्धालुओं का आना प्रति दिन बढता जा रहा था।

राजदरबार में भी इस की चर्चा होने लगी। बसवण्णा से ईर्ष्या करनेवाले लोगों को एक कल्पना सूझी। उन्होंने राजा के कान भरने शुरू किये कि राजकोष से, बसवण्णा यह सब कुछ कर रहा है। शैव भक्तों की भोजन-व्यवस्था उसी कोष का उपयोग कर की जा रही है। राजाने बसवण्णा से ही सीधा प्रश्न किया। बसवण्णा का उत्तर स्पष्ट था, "महामने में आनेवाले श्रद्धालुओं द्वारा स्वयं अर्जित धन

से यह खर्च चलता है। मैं स्वयं शैव हूं। दूसरों का धन लेना नहीं चाहता। आप को यदि शंका है तो मैं अपने पद से अभी त्यागपत्र देता हूं। पर उसके पूर्व इन आरोपों की पूरी जांच हो। राजकोष का सारा व्यवहार अभी देख लिया जाय।

राजाने स्वयं कोष को देखा। हर चीज व्यवस्थित थी। राजाने बसवण्णा से क्षमा मांगी। उन्होंने बसवण्णा से पद पर बने रहने का आग्रह किया। द्वेष करनेवालों को मुंह की खानी पडी। आरोप निराधार सिद्ध हुए। बसवण्णा की ख्याति और भी बढी।

बलदेव की मृत्युपर राजाने बसवण्णा को मंत्रिपद दिया। बसवण्णाने इस नये दायित्व का निर्वाह भी अत्यंत योग्यता से किया। पर उनका जीवन वही सादा ही रहा। सादा जीवन, उच्च विचार एवं शुद्ध हृदय यह था बसवण्णा का व्यक्तित्व। इनके मुख से निकलनेवाले शब्द, मोतियों से झरते थे। उनके उद्‌गार अत्यंत



" राजकोष की जांच अभी कर लें राजन !"

विनम्र रहा करते। हाथ जोडकर और शीश नवाकर वे जनता के मध्य रहते। न्यायदान में वे दृढ रहा करते। किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत हितों का दबाव उन पर नहीं आ पाता था। कठिनाइयां हों, संकट हो, वे निर्भीक वृत्ति से ही आगे बढते।

अभिनव मंडप की स्थापना कर, नये समाज का निर्माण करने का उनका कार्य जारी था। उनके जो सिद्धान्त थे, वे इस प्रकार थे :–

ईश्वर एक है। उसे कई नामों से पुकारा जाता है। एकनिष्ठ बनकर, स्वयं को उसकी सेवा में अर्पित करो।

दया, धर्म का मूल है। प्रत्येक प्राणिमात्र के प्रति हृदय में दया रहनी चाहिये। सभी के कल्याण की कामना करो। उसी के लिये जीवन रहे। स्वार्थ को कतई स्थान न दो।

इस जगत् में जिन्हें स्थान है, परलोक में भी उनका स्थान है। अपना जीवन शुद्ध हो,

व्यवस्थित हो तो आध्यात्मिक जीवन के लिये वह योग्य रहेगा। परिवार का त्याग कर, साधु बनने की कोई आवश्यकता नहीं।

किसी को भी यह अभिमान नहीं होना चाहिये कि, "मैं यह कर रहा हूं," "मैं यह दे रहा हूं।" निष्ठा से, श्रद्धा से प्रत्येक कार्य करना चाहिये। प्रदर्शन के लिये या प्रसिद्धि के लिये काम नहीं करना चाहिये।

बाहरी दिखावे को स्थान मत दो। सच्चे हृदय से शुद्ध अन्तःकरण से किये गये कार्य को महत्त्व दो। अंतर्बाह्य जीवन शुद्ध हो। शुद्ध अंतःकरण का महत्त्व रूढियों से, पुराणों से अधिक है।

धार्मिक जीवन में सभी को समान अवसर मिले। जन्म, व्यवसाय, पद, स्त्री-पुरुष का कोई प्रभाव नहीं होना चाहिये।

जीभ का स्वाद बना रहे, अच्छा लगता रहे इसी लिये खाना-पीना योग्य नहीं। भोजन और जल 'प्रसाद' के रूप में ग्रहण करना

चाहिये। अपने पद-प्रतिष्ठा का प्रदर्शन मत करो। विनम्र रहो।

जीवन–निर्वाह का साधन अच्छा हो। ईमानदारी से, प्रामाणिकता से कार्य हो। भीख नहीं मांगनी चाहिये। दैनिक आवश्यकताओं के लिये जितना जरूरी है, उतना ही खर्च करो। शेष भगवान की सेवा में, दूसरों के कल्याण के लिये अर्पित हो। अपने मस्तिष्क को गलत धारणाओं से मुक्त रखो। प्रार्थना और ध्यान-बल से, सदाचारी बनने का प्रयास करो। जीवन का लक्ष्य यही है।

यह शिक्षा मात्र भाषणों या पुस्तकों का विषय नहीं थी, उसपर आचरण किया जाता था। चलाया जाता था। उसे अपनाया गया था। अनुभव मंडप में विभिन्न व्यवसाय करनेवाले, विभिन्न स्तर के स्त्री-पुरुष थे। बसवण्णा मंत्री थे। प्रभुदेव एक आध्यात्मिक पुरुष थे। सिद्धराम कर्मयोगी थे। चन्न-बसवण्णा, आध्यात्मिक क्षेत्र के विद्वान थे। अक्कमहादेवी संन्यासिनी थीं।

माछय्या धोबी, चंदय्या डोर बनानेवाला, रामण्णा गोपालक, मुद्दय्या किसान, रेम्मव्वे बुनकर, रामीदेव कोतवाल, कन्नय्या तेली, संगण्णा वैद्य, बसप्पा बढई, कक्कय्या चमार, हरलय्या मोची सभी बंधुभाव से रहा करते।

सिद्धान्त जीवन में उतारे

बसवण्णा राज्य के मंत्री थे। उन्होंने सिद्धान्त केवल दूसरों के लिये नहीं बनाये, अपने जीवन में प्रथम उन्हें उतारा। उसके बाद उनका प्रचार किया। लोगों को मार्गदर्शन किया।

एक रात्रि भारी शोरगुल होने से, बसवण्णा नींद से जाग उठे। उन्होंने देखा, उनकी पत्नी गहरी नींद में है, और एक चोर उसके आभूषण चुरा रहा है।

चोर को कष्ट न हो यह सोचकर बसवण्णा स्वयं उठे और उन्होंने उसे आभूषण निकालकर दे दिये। चोर में भी उन्हें भगवान के ही दर्शन हो रहे थे।

एक बार कुछ चोर, उनके यहां से गऊएं चुराकर ले जा रहे थे। बछडों को उन्होंने छोड दिया था। बछडे भूखे थे। मां के लिये चिल्ला रहे थे। बसवण्णा को बहुत दुख हुआ। उन्होंने वे बछडे, उनकी माताओं के पास, चोरों के डेरों पर पहुंचा दिये।

चोरों पर इसका असर हुआ। वे लज्जित हुए। उन्होंने अपना जीवन सुधारा और प्रामाणिकतापूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। बसवण्णाने अपने व्यवहार से कई धोखेबाज, धूर्त लोगों का जीवन ही बदल दिया।

शैवशरणों के संगठन के आदर्शयुक्त जीवन से जनता का मनोबल भी ऊंचा होता गया। बसवण्णा की कीर्ति और फैली।

संगमेश्वर में

परंतु कुछ पुराणपंथी लोगों को यह पसंद नहीं था। वे प्रारंभ से ही बसवण्णा का विरोध कर रहे थे। वे अवसर की खोज में ही थे कि, किस भांति बसवण्णा को परेशान किया

जाय । और उन्हें मनचाहा अवसर भी मिल गया । मधुवरस नामक एक ब्राह्मण और हरलय्या नामक एक चर्मकार को, अनुभव मंडप का सदस्य बनने पर, धारण करने के लिये, लिंग दिया गया था । वे समान स्तर के हो चुके थे । मधुवरस की कन्या का विवाह हरलय्या के पुत्र के साथ हो चुका था । उन दिनों की जाति–व्यवस्था और रूढिवादिता म यह एक अति क्रांतिकारी कदम था । परंतु विवाह के लिये बसवण्णा का आशीर्वाद था । अनुभव मंडप के सभी लोगों को यह स्वीकार था ।

पुराणपंथी लोगोंने इस विवाह का घोर विरोध किया । उन्होंने शोर मचाया कि बसवण्णा उनके पवित्र धार्मिक रीतिरिवाजों को नष्ट कर रहा है । राजा का कर्तव्य है कि वह पुराने रीतिरिवाजों, मान्यताओं की रक्षा करें । उन्होंने मांग की कि मधुवरस एवं हरलय्या को दंड दिया जाना चाहिये । राजाने दबाव में आकर, इन दोनों को देहदंड की शिक्षा सुना दी । बसवण्णा को अत्यंत दुख हुआ । उन्होंने उसी समय

निश्चय कर लिया कि जहां ऐसा अन्याय हो, उस नगरी में रहने का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने मंत्रिपद छोड दिया और वे संगम पर लौट आये। वहां शांति थी। उन्होंने अपना शेष जीवन प्रार्थना में, तपस्या में, ध्यानधारणा में बिताया। ११६७ ईसवी में उन्होंने देहत्याग किया और भगवान संगमेश्वर के साथ एकाकार हो गये।

हरलय्या और मधुवरस का बलिदान एक महान कार्य के लिये हुआ। वे बलिदानी वीर हुए। बसवण्णा के तत्वज्ञान पर उनकी बलि चढी। शैवशरण के लोग कल्याण से निकल पडे और इधर-उधर जा बसे। बसवण्णा का संदेश वे स्थान-स्थान पर पहुंचाते रहे। यह संदेश आज भी, अनेक लोगों के लिये स्फूर्ति देनेवाला सिद्ध हुआ है।

बसवण्णा के वचन–अमृतकुंभ

इस पुस्तक का आरंभ ही बसवण्णा के वचनों से हुआ है। चोरी मत करो, हिंसा न करो। ये सरल हैं। सुंदर हैं। सारभूत हैं।

महान लोग सरल भाषा में ही महान विचार प्रकट करते हैं।

वचन में एक है--क्रोध से बचो। क्रोध अच्छा नहीं होता। एक अन्य वचन में बसवण्णा ने कहा है-किसी से कोई क्रोध क्यों करें? जो क्रोधित है उससे क्रोध क्यों? इससे किसे लाभ है? किसे हानि पहुंचती है? शारीरिक क्रोध से प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है, मानसिक क्रोध से बुद्धि कमजोर पड जाती है। इस क्रोधाग्नि से पडौसी का घर ही नष्ट नहीं होता, जहां यह उत्पन्न हुई उसे भी नष्ट करती है।

क्रोध का उत्तर क्रोध नहीं। इससे किसी को लाभ नहीं। क्रोधी व्यक्ति या विरोधी किसी पर क्रोध मत करो। इससे प्रतिष्ठा पर आघात होता ही है, न्यायबुद्धि भी प्रभावित होती है। जहां क्रोधाग्नि प्रारंभ हुई उसे प्रथम जलाकर फिर वह फैलती है। हमारे क्रोध से प्रथम हमें चोट पहुँचती है, बाद में दूसरों को। क्रोधाग्नि का यह विवेचन क्रोध के दुष्परिणामों को ही प्रकट करता है।

बसवण्णा की गऊएं चुरायी जाने की घटना का उल्लेख इसके पूर्व आ चुका है। बसवण्णा ने एक वचन में इसका संदर्भ दिया है—

भगवान के लिये ऐसा न कहो कि चोर गऊएं चुराकर ले गये;

भगवान के लिय कोई शोरगुल न मचाओ;

भगवान के लिये इसका कहीं उल्लेख भी मत करो;

भगवान संगम यहां भी दूध ग्रहण करते थे, वे वहां भी दूध ग्रहण करते हैं।

भगवान कूडलसंगम सवत्र एक ही हैं।

हम में भी वे हैं, चोरों के मन में भी वे हैं। वे ही यह दूध ग्रहण कर रहे हैं।

एक ही भगवान सर्वत्र है, यही उनकी मान्यता थी। यही इस वचन से प्रकट हुई है।

हम पूजा करते हैं तो यही भाव हमारे मन में हो और जब हम अपने दैनंदिन कार्य करते हैं तो उसमें भी यही भरा हो। इस

भाव के बिना जो भी पूजा की जावेगी वे निष्प्राण चित्र-सी होगी। नित्य के व्यवहार के उदाहरणों से वे अपनी बात समझाते थे। उनके वचनों की यही विशेषता थी।

कुछ लोग सोचते हैं कि बडे-बडे मन्दिरों का निर्माण करना या धार्मिक उत्सवों का आयोजन करना धार्मिक प्रवृत्ति का लक्षण है।

परन्तु बसवण्णा कहते हैं—"जिनके पास धन है, वे मंदिरों का निर्माण करते हैं। पर मैं तो गरीब हूं। मैं क्या करूं ? मेरी टांगें ही खंभे हैं- स्तंभ हैं। मेरा शरीर ही स्वयं एक मन्दिर है। मेरा शीश ही स्वर्णशिखर है।

"हे कूडलसंगम, जो स्थिर है, अविचल है उसे अन्त है। पर जो गतिशील है, उसका कोई अन्त नहीं।

" धनी व्यक्ति मन्दिर का निर्माण कर सकता है। पर मुझसा गरीब क्या करे ? मैं एक अलग ढंग का मंदिर बनाता हूं। मेरा शरीर ही

मंदिर है। मेरे पैर उसके स्तंभ। मेरा शीश उसका स्वर्णशिखर। वह मंदिर तो स्थिर है; पर मेरा मंदिर गतिशील है। जहां मैं जाता हूं, वह साथ ही होता है। इसी कारण वह अविनाशी है। जो भौतिक साधनों से बना है, वह नष्ट होगा ही। पर आत्मा तो अमर है, अविनाशी है। अपने शरीर को मन्दिर बनाओ, यह सन्देश बहुमूल्य है। हमारे अपने शरीर के बने इस मन–मन्दिर में बसे भगवान को हम देखें।" बसवण्णा ने पूजा के बाह्य स्वरूप को कभी भी महत्त्व नहीं दिया। न ही धार्मिक रूढियों को मान्यता दी।

पूजा–अर्चा और दानधर्म के बारे में बसवण्णा ने एक वचन में कहा है—

"कुछ तो अपनी अनिच्छा से किये कार्य का फल भुगत रहे हैं, तो कुछ पवित्र भाव से न किये गये दान का।

"यदि भगवान की कृपा प्राप्त करनी है तो हम अपने प्रत्येक कर्म में प्रामाणिक रहना

होगा।" जो पूरे समर्पण भाव से मंदिर में नहीं जाते, उनका उल्लेख करते हुए बसवण्णा कहते हैं—

"मंदिर में भक्तिभाव से जाने का नाटक करने में क्या अर्थ ? जब सारा ध्यान तो अपनी चप्पलों में हो, भगवान में नहीं !"

कितनी मार्मिक बात है। हम अपनी चप्पलें मंदिर के बाहर उतारते हैं। पर भगवान की प्रार्थना करते समय भी ध्यान चप्पलों की ओर, उनकी सुरक्षा की ओर ही रहता है। यह तो सर्वसाधारण का अनुभव है। बसवण्णा के वचन ऐसे अनुभवों पर ही आधारित हैं।

साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसकी प्रशंसा की जाय। पर बसवण्णा की दृष्टि में प्रशंसा तो सुनहरा शस्त्र है। सोने का भले ही बना हो, पर घाव करता ही है। बसवण्णा प्रशंसा नहीं चाहते थे। वे भगवान से कहते, "हे भगवान, यदि मेरा कुछ भला करना हो

तो मेरी स्तुति करनेंवालों को रोको।" यह है सच्ची महानता !

बसवण्णा ने, धर्म का अर्थ साधारण व्यक्ति भी समझ सके इतना सरल बना दिया था। उनका यह वचन देखिये—

" स्वर्ग और मनुष्य का संसार, कहीं और नहीं।
सत्य का पालन ही स्वर्ग है;
असत्य का आचरण मनुष्य का संसार।
सद्व्यवहार ही स्वर्ग है;
दुर्व्यवहार नर्क।
मधुर वचन बोलिये, वह स्वर्ग है;
कठोर, दुर्वचन तो नर्क है।"

बसवण्णा की कोई कामना इस संसार में नहीं थी। वे कहते हैं—

"मैंने कभी कोई स्वर्ण या वस्त्र कोठार म
नहीं रखे-

आज के लिये और कल के लिये कोई कामना
नहीं रखी–
मैं यह प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं।"

बसवण्णा ने भगवान और उसके भक्तों का नाम लेकर कहा कि कभी लालच में आकर उन्होंने संग्रह नहीं किया, न इस कामना से किया कि भविष्य में कभी काम आवे।

किसी के सामने भीख के लिये झोला भी नहीं फैलाया––

"संकट से भयभीत होकर, किसीसे भी अपनी
रक्षा के लिये नहीं कहूंगा,
अपनी जीविका की रक्षा के लिये किसी के
आगे हाथ नहीं पसारूंगा।
जैसी भावना होगी, वैसा ही होगा।
मैं तुमसे अलग नहीं होऊंगा।
मैं किसी से भी भीख नहीं माँगूंगा।
भगवान, यह मेरा प्रण है।"

"अपने शरीर की रक्षा के लिये किसी से कुछ नहीं कहूंगा, किसी से कुछ नहीं मांगूंगा। जो भाग्य में लिखा है, वही होगा। जो कुछ मुझे मिलेगा, फिर वह कष्ट हो, दुःख हो या सम्पत्ति, उसे निःस्वार्थ भाव सें स्वीकार करूंगा। भगवान तुमसे भी अपने लिये कुछ नहीं मांगूंगा। बसवण्णा को किसी का डर नहीं था–

"जो होना है होगा– जो कल आना है – आज आवे। जो आज होना है, अभी होवे। भय किसे है ? झिझक किसे है ?"

भगवान के प्रति पूर्ण भक्ति, पूर्ण समर्पण-भाव रहने से ही वे इतने निर्भय हो पाये थे।

"तुम्ही हो माता, तुम्ही पिता हो
तुम्ही हो बंधु, तुम्ही सखा हो
हे भगवान कूडलसंगम, तुम्हें छोडकर
मेरा कोई नहीं।

"मुझे दूध में डुबाओ या जल में–तुम्हारी जो इच्छा होगी वही होगा।" इतनी गहरी श्रद्धा

भगवान के प्रति थी । भगवान का दर्शन वे हर स्थान पर करते थे। उन्होंने अनुभव किया था, ब्रह्मांड में जो भगवान है, वही उनमें भी है। इसी भक्तिभाव से वे गा उठते थे–

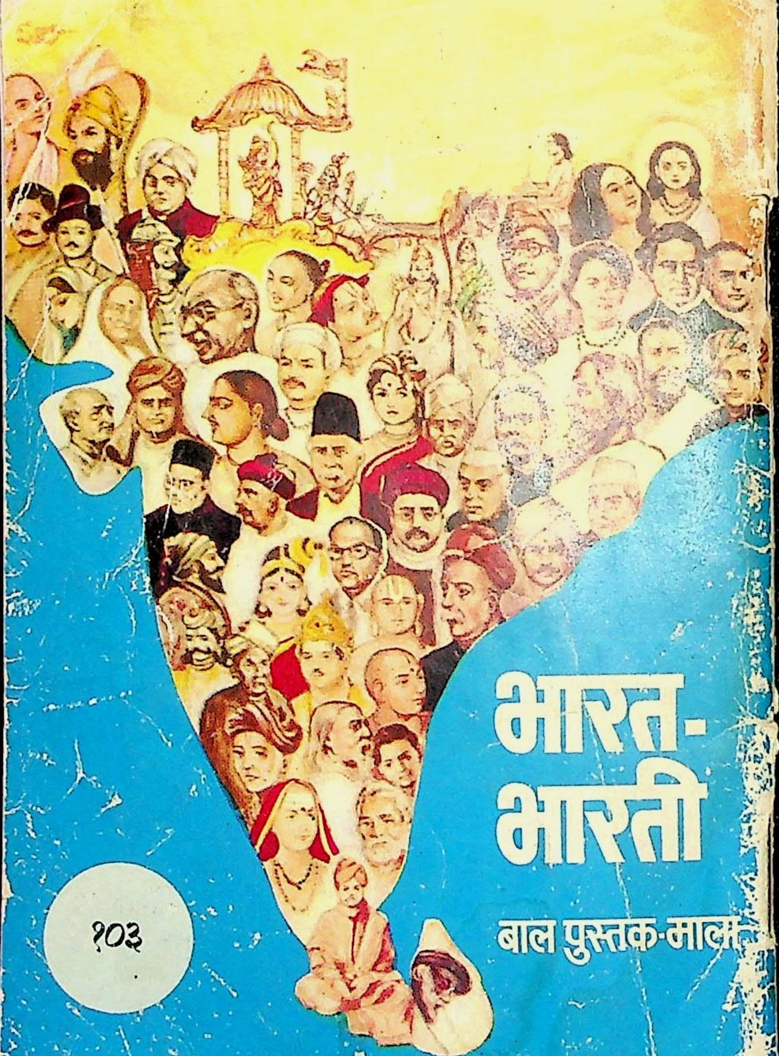
"हे कूडलसंगम
मेरे मुख में तुम्हारा ही अमृतमय नाम हो,
मेरी आंखों में केवल तुम ही बसे हो,
मेरे मन–मस्तिष्क में केवल तुम्हारा ही विचार है,
मेरे कानों में केवल तुम्हारी
गौरव–गाथा ही गूंज रही है।
तुम्हारे चरणकमल ही मेरे मन में विराज रहे हैं।"

इन वचनों में समर्पण का भाव भरा है। भाषणों में उसी भगवान का नाम। आंखों में उसी की मूर्ति, मन–मस्तिष्क उसी के विचारों से भरा हुआ। कान उसी का नाम सुनने के लिये आतुर। कमल के फूलों से मधु का पान करने-वाला भ्रमर जैसे स्वयं को भूल जाता है, वही एकात्म भाव इस भक्तिभाव में प्रदर्शित है।

वचन की अंतिम पंक्ति में 'तुम्बी' शब्द का सुंदर श्लेष प्रयोग है। पूर्व पंक्तियों से जोडे तो इसका अर्थ परिपूर्ण होता है और कमल पुष्प से जोडें तो भ्रमर।

बसवण्णा भगवान के थे। दूसरों को उन्होंने वही मार्ग दिखाया। आठसौ वर्ष बीत गये, उनके द्वारा प्रदीप्त दीप, आज भी मार्गदर्शन कर रहा है। बसवण्णा का जीवन ही स्वयं प्रकाशपुंज बन चुका है।

* *



रूईकर पथ, नागपुर ४४०००२